# 'याज्ञवल्क्य स्मृति के व्यवहाराध्याय का समीक्षात्मक अध्ययन'

**उमेश कुमार**

**सहायक प्राध्यापक, सत् जीन्दा कल्याणा महाविद्यालय, कलानौर, रोहतक**

श्रुति एवं स्मृति शब्द समकक्ष हैं। वेद सुनने की परम्परा से अनादिकाल से चले आ रहे हैं, इसलिए वेदों को श्रुति कहा जाता है। इसी प्रकार स्मरण परम्परा से जिन शास्त्रीय नियमों, परम्पराओं और आचार–संहिताओं को जीवित रखा गया है, उन्हें स्मृति कहा जाता है। स्मृतियाँ भारतीय धर्मशास्त्र का महत्त्वपूर्ण अंग है। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार श्रुति परम्परा में चारों वेद आते हैं किन्तु स्मृति शब्द का प्रयोग श्रुति अर्थात् ऋषि प्रकाशित एवं ऋषि दृष्ट वाड्.मय से भिन्न साहित्य के लिए होता है।[1] स्मृति शब्द का प्रयोग सर्वत्र ही श्रुति अर्थात् वेदों के साथ होता है। 'स्मर्यते इति स्मृतिः' अर्थात् ऐसे ग्रन्थ जो ऋषियों द्वारा स्मृति के आधार पर लिखे गए हैं।

स्मृति साहित्य में मनुस्मृति का स्थान निर्विवाद रूप से सर्वोच्च है, मनुस्मृति के पश्चात् यदि किसी स्मृति ग्रन्थ का नाम आता है तो वह है याज्ञवल्क्य स्मृति। बहुत से विद्वान् व्यावहारिक महत्त्व की दृष्टि से इसे मनुस्मृति से भी श्रेष्ठ मानते हैं। यद्यपि दोनों स्मृति–ग्रन्थों की विषय–वस्तु लगभग एक जैसी होते हुए भी याज्ञवल्क्य स्मृति की विषयवस्तु का विभाजन कहीं अधिक योग्यता, कुलशता व श्रेष्ठता से किया गया है। जो विषय मनुष्यों के लिए अत्यन्त कठिन या अगम्य प्रतीत होते हैं, याज्ञवल्क्य स्मृति उन्हें उदारतापूर्वक सरल–सुगम बनाकर अनुष्ठान का आदेश देती है। महर्षि याज्ञवल्क्य एक मौलिक विचारक एवं धर्मशास्त्रकार हैं।

याज्ञवल्क्य–स्मृति पर मुख्य रूप से 3 टीकाएँ प्राप्त होती हैं। इनमें सबसे पहली टीका विश्वरूप कृत 'बालक्रीडा' मानी जाती है। अपरार्क ने 'याज्ञवल्क्यीय धर्मशास्त्र निबन्ध' नामक टीका लिखी तथा सर्वप्रचलित तथा सर्वप्रसिद्ध 'मिताक्षरा' टीका है जिसके रचयिता विज्ञानेश्वर हैं। शूलपाणि ने भी याज्ञवल्क्य स्मृति पर 'दीपकलिका' नामक टीका लिखी है किन्तु यह टीका अत्यन्त संक्षिप्त है।

धर्मशास्त्रों ने 'व्यवहार' शब्द का अर्थ अनेक प्रकार से किया गया है। लेन–देन, झगड़ा या मुकद्दमा, लेन–देन से सम्बन्धित कानूनी सामर्थ्य व किसी विषय का निश्चय करने के साधन रूप विभिन्न अर्थो में प्रयुक्त हुआ यह शब्द अपनी महत्ता को दर्शाता है। सामान्यतः व्यवहार शब्द झगड़ा या मुकद्दमा अर्थ में ही ग्रहण किया गया है हालांकि याज्ञवल्क्य स्पष्ट रूप से व्यवहार की कोई परिभाषा नहीं देते परन्तु टीकाकार विज्ञानेश्वर का कहना है कि एक ही विषय में दो पक्षों में विवाद होने पर निर्णय तथा उसके लिए प्रयुक्त प्रक्रिया ही व्यवहार है।[2]

---

[1] याज्ञवल्क्य स्मृति (अनुवाद – उमेशचन्द्र पाण्डेय) पृ॰ – 27

[2] याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/1 पर मिताक्षरा– टीका

© 2017 IJRRA All Rights Reserved 

सामान्य रूप से व्यवहार के 4 अंग माने जाते है। याज्ञवल्क्य ने भी इसे चतुष्पाद अर्थात् चार पादों वाला माना है।[3] याज्ञवल्क्य ने इन चारों पदों के नाम का उल्लेख नहीं किया है, परन्तु मिताक्षरा टीका में इन्हें भाषापाद, उत्तरापाद, क्रियापाद और साध्यासिद्धपाद नाम से उद्धृत किया गया है। किसी व्यक्ति से पीड़ित होने पर वादी के द्वारा जब राजा को आवेदन किया जाता है तो व्यवहार का प्रारम्भ हो जाता है और इसे ही पूर्वपाद या भाषापाद कहते हैं।

याज्ञवल्क्य के अनुसार जब अर्थी और प्रत्यर्थी आमने सामने आ जाएँ तो सबसे पहले राजा या न्यायाधीश को चाहिए कि अर्थी के द्वारा जो निवेदन है प्रत्यर्थी के सामने उस निवेदन के वर्ष, मास, दिन, जाति तथा विवाद विषयादि का भी उल्लेख कर लें[4] अर्थात् उसकी रिपोर्ट की तारीख, मास व वर्ष तथा दोनों के नाम, जाति, स्थान, वृत्ति, विवादादि विषय को सरकारी रजिस्टर में नोट कर लें। मिताक्षरा में आदि शब्द से द्रव्य, संख्या, वेला, स्थान को भी ग्रहण किया गया है।[5] आधुनिक न्याय–व्यवस्था में भी विवाद की परिस्थिति में इसी प्रकार से केस दर्ज किया जाता है।

भाषापाद के पश्चात् अर्थी द्वारा लगाये गए सभी आरोपों का उत्तर प्रत्यर्थी से लिखित रूप में लेने की प्रक्रिया को उत्तरपाद कहा जाता है। प्रत्यर्थी की बात लिखने के बाद अर्थी अभियोग सिद्ध करने वाला प्रमाण दिखाता था। प्रतिवादी को उत्तर देने के लिए निश्चित समय दिया जाता था परन्तु साहस, चोरी, कठोर भाषण, गौ के महापालक, प्राण व धन का नाश एवं स्त्रियों के विवाद में तत्काल उत्तर देने का निर्देश था। भारतीय न्याय–व्यवस्था में भी कतिपय विषयों को अतिसंवेदनशील श्रेणी भी शामिल किया जाता है। याज्ञवल्क्य शिक्षा के अनुसार यदि अर्थी द्वारा लगाया गया अभियोग झूठा सिद्ध होता था तो अभियोग के मूल्य का दो गुणा धन देना पड़ता था।

क्रियापाद न्यायप्रक्रिया का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है। इसमें वादी, प्रतिवादी अपने समर्थन में साक्षियों को उपस्थित करते हैं। अपने तथ्यों की पुष्टि में प्रमाण दिया जाना तथा उसकी विवेचना होना व्यवहार को क्रियात्मक स्वरूप प्रदान करता है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने लिखित, मुक्ति, साक्षी और दिव्य इन चार प्रमाणों का वर्णन किया है।[6]

याज्ञवल्क्य द्वारा कथित साध्यसिद्धि पाद को अन्य स्मृतिकारों द्वारा निर्णयपाद भी कहा गया है क्योंकि इसी पाद में जय और पराजय का निर्णय होता है। निर्णय की घोषणा विजयी पक्ष को न्यायाधीश को हस्ताक्षर और राजमुद्रा से युक्त जयपत्र और हीनवादी को हीनपत्र देकर की जाती थी। महर्षि याज्ञवल्क्य ने न्याय–व्यवस्था को सुदृढ़रूप से प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया है।

जिस प्रकार आधुनिक न्याय व्यवस्था में पराजित पक्ष अपने पक्ष का पुनरूद्घाटन प्रार्थना पत्र देकर करता है अथवा निर्णय के विपरीत न्याय की उपेक्षा सम्बन्धी आरोप लगाकर दूसरा विवाद उसी विषय पर

---

[3] याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/8
[4] याज्ञवल्क्य स्मृति 2/6
[5] याज्ञवल्क्य स्मृति 2/6 पर मिताक्षरा
[6] याज्ञवल्क्य स्मृति – 2/12

© 2017 IJRRA All Rights Reserved 

प्रस्तुत कर देता है या बड़ी अदालत में अपील कर देता है। इसी प्रकार की व्यवस्था महर्षि याज्ञवल्क्य ने व्यवहाराध्याय में की है।

याज्ञवल्क्य ने सभासदों की योग्यता के विषय में लिखा है कि ऐसे व्यक्ति को इस पद के लिए नियुक्त किया जाता था जो श्रुति–अध्ययन सम्पन्न, धर्मज्ञ, सत्यवादी, समभावी और सर्वधर्मविद् हो। याज्ञवल्क्य स्मृति में चार प्रकार के न्यायालयों का भी वर्णन प्राप्त होता है। न्यायधीश, पूग, श्रेणी व कुल न्यायालयों में पूर्व–पूर्व के क्रम को श्रेष्ठ बताया गया है।

ऋणादान प्रकरण में ऋण के विषय में कहा गया है कि जब व्यक्ति अपनी आवश्यकता की पूर्ति अपने पास उपलब्ध साधनों से करने में असमर्थ होता है तथा ऐसी स्थिति में जब किसी दूसरे व्यक्ति से प्रत्यावर्तनीय सहायता लेता है तो वह सहायता ऋण कहलाती है। यहाँ पर ऋणादान की प्रक्रिया, उसके अंश, दानविधि, ब्याज–वृद्धि आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

दायविभाग प्रकरण में सर्वप्रथम दाय को अप्रतिबंध व सप्रतिबंध दाय में विभाजित किया गया है। संयुक्त कुल सम्पत्ति व पृथक् सम्पत्ति के रूप से भी दो विभाग किए गए है। याज्ञवल्क्य ने बताया है कि दायविभाग का निर्धारण पिता की इच्छा से सम व विषम दोनों प्रकार का होता है। दायभाग में स्त्रियों के अंश व उसके विभाजन तथा स्त्रीधन के उत्तराधिकारियों के विषय में भी वर्णन किया गया है। याज्ञवल्क्य के दायविभाजन एवं स्त्रीधन के कतिपय नियमों का आधुनिक भारतीय न्याय व्यवस्था में ज्यों का त्यों स्वीकार किया गया है।

स्मृतिग्रन्थों व धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि मनुष्य व्यक्तिगत लोभ के वशीभूत परहित की भावना से दूर हटकर जब भी ऋषियों व नीतिशास्त्रकारों द्वारा प्रतिपादित नियम व परम्पराओं, अनेक प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान व विधानों, पूर्वजों द्वारा स्थापित आदेश, मर्यादा व सदाचार के मार्गो का उल्लघंन करता था तो उसे अपराधी व पापी मानकर हेय दृष्टि से देखा जाता था।[7] आजकल जिसे मानहानि कहा जाता है प्राचीनकाल में वही वाक्पारूष्य के अर्न्तगत आता था। कात्यायन के अनुसार निन्दित शब्दों का उच्चारण, हुंकार, कठोर भाषण करना वाक्पारूष्य की श्रेणी में ही आता था।[8] वाक्पारूष्य तीन प्रकार का होता है – निष्ठुर, अश्लील व तीव्र। नारद[9] व चाणक्य[10] ने भी वाक्पारूष्य को तीन श्रेणियों में रखा है। आघात पहुँचाने के लिए किसी का स्पर्श करना, आक्रोशपूर्ण चोट पहुँचाने के लिए किसी का स्पर्श करना, आक्रोशपूर्ण चोट पहुँचाने की धमकी देना अथवा हार पैर से आघात पहुँचाना ही दण्ड पारूष्य है।[11] इसी क्रम में सम्पूर्ण दण्ड–व्यवस्था का वर्णन याज्ञवल्क्य स्मृति के व्यवहार अध्याय में प्राप्त होता है। वस्तुतः वर्तमान भारतीय न्याय–व्यवस्था में याज्ञवल्क्य–स्मृति का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

---

[7] गौतम धर्मसूत्र, तृतीय प्रश्न प्रथमाध्याय, पृष्ठ – 2

[8] धर्मशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ 819, पी.वी. काणे

[9] नारद स्मृति – 18/23

[10] अर्थशास्त्र–3/18

[11] याज्ञवल्क्य स्मृति 2/207

© 2017 IJRRA All Rights Reserved 